International Journal of Social Science and Education Research
www.socialsciencejournals.net
Online ISSN: 2664-9853, Print ISSN: 2664-9845
Received: 22-05-2021, Accepted: 06-06-2021, Published: 21-06-2021
Volume 3, Issue 1, 2021, Page No. 20-22

मौन

डॉ. भावना आचार्य
सह–आचार्य, संस्कृत, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश
मन अन्तःकरण है। उसकी ओर उन्मुख होने की क्रिया है मनन। मनन करने वाला व्यक्ति 'मुनि' कहलाता है। मनन की क्रिया बाहरी इन्द्रियों को अन्तर्मुख करने पर ही संभव है। इस प्रक्रिया में जब मुनि वागिन्द्रिय की क्रिया को स्थगित कर देता है तो उसकी भाव–दशा ''मौन'' कहलाती है। इसलिए कहा गया है कि– 'मुनेर्भावः मौनम्' अर्थात् मुनि का भाव ही मौन है। सामान्यतया चुप्पी को ही मौन कहते हैं।
स्वतः चुप रहना, विचार–दशा में चुप रहना, किसी प्रश्न के उत्तर में न बोलना, मनन की स्थिति में वाणी को स्थगित रखना आदि सब 'मौन' के क्षेत्र में आते हैं।
हमारी बाह्य ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में एक मात्र 'वक्त्र' या मुख ही ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी। रसना या जिह्वा से स्वाद ग्रहण करते समय यह 'ज्ञानेन्द्रिय' है तो 'वक्त्र' से वर्णोच्चारण करते समय यह 'कर्मेन्द्रिय' कहलाती है। अतः इसके दो कार्य हैं– रसना (जीभ) से ''स्वाद'' और वक्त्र (वदन) से ''वाद''। लोक व्यवहार में ये दोनों ही आनंद (आस्वाद) के मूल हैं तो वाद–विवाद के झगड़े की जड़ भी हैं उक्ति है – 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' यानी वाद–विवाद करने से, शास्त्रार्थ से तत्त्वज्ञान होता है किन्तु वाद बढ़ जाय तो कभी–कभी बड़ी मुश्किल भी खड़ी हो जाती है।
सत्य–अहिंसा के पुजारी अन्वेषक महात्मा गांधी ने अपनी प्रार्थना–सभा ''मौन'' को अन्तःप्रकाश बताते हुए कहा था – ''मौन'' के प्रकाश में आत्मा अपना रास्ता साफ़तौर पर पा जाती है। आपके भीतर जो कुछ दबा–छिपा होता है वह सब इस अवस्था में बिल्कुल साफ़ दिखने लगता है। इसलिए मौन कोई शून्यभाव नहीं, अन्तर्मन में आलोक का आनंदमय भराव है, निःशब्द नीरव संगीत का आन्तरिक गुंजन है।
प्रायः लोग दैनंदिन जीवन में कुछ समय 'व्रत' की तरह मौन की साधना करते हैं। यह अभ्यास दिन–भर शब्दों के अपव्यय से क्षीण होने वाली उनकी चेतना में नई स्फूर्ति भर देता है, उनकी आस्था और विश्वास को दिव्य ऊर्जा प्रदान करता है, कई प्रश्नों के उलझे ताने–बाने को सुगमता से सुलझा देता है। कैनेडियन कार्टूनिस्ट लिन जॉन्स्टन का कहना है – ''सबसे जोरदार वक्तव्य अक्सर मौन से ही कहे जाते हैं।'' एक सार्थक चुप्पी कई बार बड़बोले निरर्थक प्रश्नों का अनकहा उत्तर बन जाती है।

मूल शब्दः मौन, मनन, वाणी, चुप्पी, संयम, वाचालता, ख़ामोशी, साधना

प्रस्तावना
मन अन्तःकरण है। उसकी ओर उन्मुख होने की क्रिया है मनन। मनन करने वाला व्यक्ति 'मुनि' कहलाता है। मनन की क्रिया बाहरी इन्द्रियों को अन्तर्मुख करने पर ही संभव है। इस प्रक्रिया में जब मुनि वागिन्द्रिय की क्रिया को स्थगित कर देता है तो उसकी भाव–दशा ''मौन'' कहलाती है। इसलिए कहा गया है कि– 'मुनेर्भावः मौनम्' अर्थात् मुनि का भाव ही मौन है। सामान्यतया चुप्पी को ही मौन कहते हैं।

अध्ययन क्षेत्र
संस्कृत, हिन्दी, उर्दू काव्य, साहित्य ।
मन अन्तःकरण है। उसकी ओर उन्मुख होने की क्रिया है मनन। मनन करने वाला व्यक्ति 'मुनि' कहलाता है। मनन की क्रिया बाहरी इन्द्रियों को अन्तर्मुख करने पर ही संभव है। इस प्रक्रिया में जब मुनि वागिन्द्रिय की क्रिया को स्थगित कर देता है तो उसकी भाव–दशा ''मौन'' कहलाती है। इसलिए कहा गया है कि– 'मुनेर्भावः मौनम्' अर्थात् मुनि का भाव ही मौन है। सामान्यतया चुप्पी को ही मौन कहते हैं।
स्वतः चुप रहना, विचार–दशा में चुप रहना, किसी प्रश्न के उत्तर में न बोलना, मनन की स्थिति में वाणी को स्थगित रखना आदि सब 'मौन' के क्षेत्र में आते हैं। यह 'वाक्संयम्' बहुत महत्त्वपूर्ण है। वाणी के संयम को ही वास्तव में संयम कहा गया है – 'वाक्संयमः संयमः'। भगवद्गीता में मौन को तपस्या के रूप में परिभाषित किया गया है –

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुयते।।

हमारी बाह्य ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में एक मात्र 'वक्त्र' या मुख ही ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी। रसना या जिह्वा से स्वाद ग्रहण करते समय यह 'ज्ञानेन्द्रिय' है तो 'वक्त्र' से वर्णोच्चारण करते समय यह 'कर्मेन्द्रिय' कहलाती है। अतः इसके दो कार्य हैं– रसना (जीभ) से ''स्वाद'' और वक्त्र (वदन) से ''वाद''। लोक व्यवहार में ये दोनों ही आनंद (आस्वाद) के मूल हैं तो वाद–विवाद के झगड़े की जड़ भी हैं उक्ति है – 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' यानी वाद–विवाद करने से, शास्त्रार्थ से तत्त्वज्ञान होता है किन्तु वाद बढ़ जाय तो कभी–कभी बड़ी मुश्किल भी खड़ी हो जाती है। रहीम ने ठीक कहा है –

'रहिमन' जिह्वा बावरी, कहि गई सरग पताल।
आपुतो कहि भीतर गई, जूती खात कपाल।।

जिह्वा तो बावरी है ही, ऊटपटांग कुछ का कुछ बोल–बक दे। जब ऐसा कुछ कांड हो जाय, तो बेचारे कपाल के जूती खाने की नौबत आ ही जाती है। जो सिर फिरे वाचाल लोग यह मानकर कि ''मुखमस्तीति वक्तव्यम्' (भगवान ने मुँह दिया है तो बोलना ही चाहिए) अनर्गल प्रलाप कर बैठते हैं, उनके कपाल की खैर नहीं। इसलिए ज्ञानियों ने वाणी के संयम को ही सच्चा और अच्छा संयम कहा है। यही संयम 'मौन' कहलाता है।

मौन आध्यात्मिक योग है, जो बड़े अभ्यास से सिद्ध होता है। शोरगुल और ध्वनि–प्रदूषण से ग्रस्त इस रुग्ण दुनिया में मौन एक शान्तिदायक औषधि है, अतिस्वन से शिथिल शरीर के लिए जीवनदायिनी संजीवनी है, हृदय से शब्दहीन संलाप करने का स्वस्थ साधन है। क्रोध को जीतने में मौन जितना सहायक होता है, उतनी और कोई वस्तु नहीं। 'कामायनी' में जयशंकर प्रसाद ने लिखा है –

तुमुल कोलाहल – कलह में
मैं हृदय की बात रे मन।

यह हृदय की बात मौन में ही की जा सकती है। अतः मौन अन्तर्मन तक पहुँचने की सरल पगडंडी है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था – ''मौन हमारी वाणी को आश्रय देता है।''

भर्तृहरि ने कहा है कि 'विभूषणं मौन पंडितानाम्' यानी ज्ञान–गोष्ठी में कोई अपण्डित (मूर्ख) फँस जाय और चर्चा न कर पाये, वहाँ उसके लिए विभूषण बन जाता है। विभूषण ही नहीं, रक्षा–कवच भी। किन्तु कालिदास ने दिलीप का गुण–गान करते हुए लिखा है – 'ज्ञाने मौनम्' ज्ञान की पराकाष्ठा वाचालता नहीं, मौन की कसौटी पर परखी जाती है। जर्मन दार्शनिक मैस्टर एग्हार्ट का यही कथन है कि मौन रहकर आप अपनी गरिमा अधिक आसानी से बनाये रख सकते हैं। मौन गंभीरता (संजीदगी) का अभिव्यंजन होता है, छिछोरपन का नहीं, यही बात फ़िराक़ गोरखपुरी ने एक शेर में बयाँ की है –

आए थे हँसते–खेलते मैख़ाने में 'फिराक़'
जब पी चुके शराब तो संजीदा हो गए।।

चुप रहना एक कला है । लैटिन कवि डेसिनस मैग्नस कहते हैं – 'जिसे चुप रहने की कला नहीं आती, वास्तव में उसे बोलना भी नहीं आता।' एक सार्थक चुप्पी को अर्थहीन शब्दों से कहीं अधिक प्रभावशाली कहा जा सकता है। पंचतन्त्र में दृष्टान्तपूर्वक पशु–पक्षियों की कहानियों के माध्यम से मौन को सर्वार्थसाधक बताया गया है :–

आत्मनो मुखदोषेण बध्यन्ते शुकसारिकाः।
बकास्तत्र न बध्यन्ते मौनं सर्वार्थसाधनम्।[2]

मुखरता के दोष के कारण ही तोता–मैना पिंजरे में डाले जाते हैं, बगुले नही बाँधे जाते, अतः मौन सभी अर्थों का साधक है, वाचालता नहीं। भारतीय संस्कृति में यह भी कहा गया है –

स्नानं मौनेन कर्तव्यं मौनेन हरपूजनम्।

स्नान और प्रभु–पूजन मौनपूर्वक करना चाहिये। अर्थात् भोजन के दौरान मौन रहने का महत्त्व सिद्धार्थ के एक प्रसंग में मिलता है जब वे बुद्धत्व को प्राप्त नहीं हुए थे और निरंजना नदी के तटीय वनों में वृक्ष के नीचे ध्यान करते थे। एक दिन सिद्धार्थ अपने शिष्य से बातें कर रहे थे तभी उनकी शिष्या भोजन लेकर आई। जैसे ही सिद्धार्थ ने भोजन करना प्रारंभ किया, उन्होंने बात करना बंद कर दिया। जितनी देर तक वे भोजन करते रहे, बिल्कुल चुप रहे। शिष्य को हैरानी हुई। उसने सिद्धार्थ को भोजन करने के उपरांत उनसे पूछा – ''गुरूदेव! आप मेरे आने के बाद निरन्तर वार्तालाप करते रहे, किन्तु भोजन के समय एक शब्द भी नहीं बोले ?'' सिद्धार्थ बोले – ''भोजन का निर्माण बड़ी कठिनाई से होता है। किसान पहले बीज बोता है, फिर पौधों की रखवाली करता है – और तब कहीं जाकर अनाज पैदा होता है। फिर घर की महिलाएँ उसे बड़े जतन से खाने योग्य बनाती हैं। इतनी कठिनाई से तैयार भोजन का पूरा आनंद तभी संभव है, जब हम पूर्णतः मौन हो। वस्तुतः शांति से किया गया भोजन न केवल शारीरिक भूख को तृप्त करता है, बल्कि मानसिक आनंद और सात्त्विक ऊर्जा भी देता है।''

महान् विचारक कार्लाइल मानते हैं कि वाचालता महान् है, परन्तु ख़ामोशी (मौन) उससे भी बढ़कर है। उनका कथन है कि विचार तब तक परिपक्व नहीं हो पाते, जब तक उन्हें मौन की धीमी आँच में न पकाया जाए। मौन प्रातःकाल की वह नर्म और ताजा धूप है जिसका स्पर्श पाकर विचारों की कलियाँ चटखने लगती हैं। एक रोमन राजनेता कैटो द ऐल्डर से जोड़ते हुए लिखा है – 'धार्मिकता का पहला लक्षण जीभ को सँभालकर रखना है। देवताओं की निकटता वही हासिल करता है जिसे यह पता होता है कि खुद सही होते हुए भी चुप कैसे रहा जा सकता है।' चुप्पी वह बारीक चलनी है जिसमें वाचालता का सारा कचरा अपने–आप छन जाता है और सत्य एक–एक बूंद टपक कर अन्तःकरण में संचित होता जाता है। क्योंकि वाचालता महान् है, परन्तु मौन उससे भी महान् है। इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने देवोपासना–पद्धति में मौन को अनिवार्य स्थान दिया है। सत्य–अहिंसा के पुजारी अन्वेषक महात्मा गांधी ने अपनी प्रार्थना–सभा ''मौन'' को अन्तःप्रकाश बताते हुए कहा था – ''मौन'' के प्रकाश में आत्मा अपना रास्ता साफ़तौर पर पा जाती है। आपके भीतर जो कुछ दबा–छिपा होता है वह सब इस अवस्था में बिल्कुल साफ़ दिखने लगता है। इसलिए मौन कोई शून्यभाव नहीं, अन्तर्मन में आलोक का आनंदमय भराव है, निःशब्द नीरव संगीत का आन्तरिक गुंजन है। तभी तो ब्रिटिश कवयित्री क्रिस्टीना रोजेरी झूमकर कह उठती है– 'किसी भी गाने से ज्यादा संगीतमय होता है मौन।' हमारे पवित्रतम विचारों का निराकार मंदिर है मौन। सुप्रसिद्ध गीतकार कवि गोपालदास 'नीरज' ने एक मुक्तक में 'मौन' की मार्मिक परिभाषा की है–

शब्द तो शोर है, तमाशा है,
भाव के सिन्धु में बताशा है।
मर्म की बात होंठ से न कहो,
मौन ही भावना की भाषा है।

प्रायः लोग दैनंदिन जीवन में कुछ समय 'व्रत' की तरह मौन की साधना करते हैं। यह अभ्यास दिन–भर शब्दों के अपव्यय से क्षीण होने वाली उनकी चेतना में नई स्फूर्ति भर देता है, उनकी आस्था और विश्वास को दिव्य ऊर्जा प्रदान करता है, कई प्रश्नों के उलझे ताने–बाने को सुगमता से सुलझा देता है। कैनेडियन कार्टूनिस्ट लिन जॉन्स्टन का कहना है – ''सबसे जोरदार वक्तव्य अक्सर मौन से ही कहे जाते हैं।'' एक सार्थक चुप्पी कई बार बड़बोले निरर्थक प्रश्नों का अनकहा उत्तर बन जाती है। एक शायर ने क्या खूब कहा है –

मेरे जवाब से बेहतर है मेरी खामोशी,
न जाने कितने सवालों की आबरू रख ली।

एक बोध–कथा है संत तिलोपा की। उनकी ख्याति इस रूप में थी कि उनके पास सभी प्रश्नों के सटीक जवाब होते थे। एक बार मौलूक नाम का एक व्यक्ति उनके पास आया और अपने मन में उठने वाले अनेक प्रश्नों के उत्तर संत तिलोपा से जानने की इच्छा व्यक्त की। संत ने कहा – 'मैं तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर दूंगा लेकिन तुम्हें इसकी कीमत चुकानी होगी। मौलूक ने शर्त मान ली। तब तिलोपा बोले – 'तुम्हें दो वर्ष तक मेरे पास मौन बैठना पड़ेगा। इस अवधि में तुम्हें कितना ही कष्ट हो, किन्तु तुम कुछ नही बोलेगा। मौलूक राजी हो गया। दो वर्षों की मौन–साधना में उसका मन शांत होता गया, विचार आवेग मंद होता गया। दो वर्ष पूर्ण होने पर संत ने उससे प्रश्न पूछने का आग्रह किया तो वह उनके चरणों में झुककर बोला – 'आपकी कृपा से मैं यह जान गया हूं कि मन के मौन में ही सारे प्रश्नों के उत्तर छिपे हैं। अब मुझे कुछ नहीं पूछना। मैंने सभी प्रश्नों के उत्तर पा लिये हैं।' सार यह है कि मानव–मन में उसकी सभी जिज्ञासाओं के उत्तर मौजूद हैं कि मन से उनका उत्तर पाने के लिए मौन रहना ज़रूरी है। मौन मन की वह आदर्श अवस्था है जिसमें डूबकर मनुष्य परम शांति का अनुभव करने लगता है। चुप बने रहना मौन नही है बल्कि अनावश्यक विचारों से मुक्ति पाना, वाणी पर नियन्त्रण रखना ही मौत है। मौन शान्तचित्तता की कुंजी है, अन्तर्बाह्य इन्द्रियों के सन्तुलन का मानदण्ड है।

निष्कर्ष

मानव–मन में उसकी सभी जिज्ञासाओं के उत्तर मौजूद हैं कि मन से उनका उत्तर पाने के लिए मौन रहना ज़रूरी है। मौन मन की वह आदर्श अवस्था है जिसमें डूबकर मनुष्य परम शांति का अनुभव करने लगता है। चुप बने रहना मौन नही है बल्कि अनावश्यक विचारों से मुक्ति पाना, वाणी पर नियन्त्रण रखना ही मौत है। मौन शान्तचित्तता की कुंजी है, अन्तर्बाह्य इन्द्रियों के सन्तुलन का मानदण्ड है।

संदर्भ सूची

1. भगवद्गीता 17/16
2. पंचतंत्र 4/37
3. शिव पुराण 25/64